अप्रैल 2015 अलख अंक-04 वर्ष-2015

अलखादेश मासिक पत्रिका

अगला सत्संग
द्वितीय रविवार
10-5-2015

अगला सत्संग
अंतिम रविवार
31-5-2015

अलख अमर विवेचन प्रत्यक्षालय,

सिद्ध झंडी (माहिलपुर) जिला होशियारपुर, पंजाब।

अलख

"बन्दौ गुरु पद पदम परागा"

सम्पादकीय

भगवद प्रेमी सज्जनों,

"कलिकेवल नाम अधारा, सुमर-सुमर-२ भव उतरो पारा।

घोर कलियुग के समय में महापुरूषों ने केवल 'नाम' का आधार ही बतलाया है। घोर संकट भरी स्थिति में घोर अत्याचार की स्थिति में एक प्रभु नाम का ही सहारा है। जैसा हमारे प्राचीन भक्तों के जीवन से हमें यही प्ररेणा मिलती है कि चाहे जैसा भी समय आ जाए परन्तु नाम सुमिरण ही एक सच्चा सहारा है **जैसे हरि को नाम सदा सुख दाई।। जाको सुमर अजामल उधरेओ, गनिका हु गति पाई।। पंचाली को राज सभा में, राम नाम सुध आई।।**

द्रोपदी ने विपत्ति पड़ने पर जब सभी सहारे विफल देखे तो भगवान के सच्चे नाम का सुमिरण किया। प्रह्लाद भक्त ने पिता द्वारा दिए कष्टों से न घबरा सुमिरण में लगा रहा आखिर भगवान को भक्त का कष्ट निवारने के लिए आना पड़ा। समाज, संसार ने तो भक्तों व संतों को कष्ट ही, कष्ट दिए। महापुरूषों ने तो संसार के लोगों को समझाने जगाने अर्थात् परम कल्याणार्थ आवाज़ लगाई संसार ने उसी का ही प्राण लेकर छोड़ा। मन्सूर को सूली पर चढ़ाया। शम्स तवरेज की खाल खेंच ली, मीरां को ज़हर का प्याला पीना पड़ा और ईसा मसीह के हाथ-पैरो में कीलें ठोक कर सूली पर चढ़ा दिया। परन्तु इतने कष्ट देने पर भी उन्होंने भगवान से यही प्रार्थना की कि हे भगवान तूं-इन लोगों को सद बुद्धि दे कर अपनी ओर लगा। यह आपकी महिमा को नहीं जानते इसलिए इनके गुनाहों को माफ कर।

सन्त ज्ञानेश्वर को पत्थर मारे गए। तुलसीदास, गुरूनानक, कबीर साहिब, गुरू गोबिन्द सिंह जी को कितना कष्ट दिया, यहां तक गुरू गोबिन्द जी के लड़कों को दीवार में चिनवा दिया परन्तु इतना कुछ होने पर भी महापुरूषों ने सच्चाई का प्रचार नहीं छोड़ा नाम सुमिरण को नहीं छोड़ा। आखिर भगवान ने ही उनका भला किया।

कहने का भाव सच्ची बात कहने से ही महापुरूषों को संसार ने कष्ट दिए नहीं तो उन्होंने संसार का और क्या नुकसान किया था।

जिस समय गोस्वामी तुलसीदास जी ने काशी में रामायण का प्रचार किया तो काशी के पंड़ित पुजारी और विद्ववान् लोग तुलसीदास जी का विरोध करते हुए कहने लगे कि यह काशी शिव का पुरी है। यहां शंकर का नाम लिया जाता है। और शंकर जी की पूजा होती है। यहां राम-नाम का प्रचार मत करो। अर्थात् विरोध होते हुए भी महापुरूषों ने सत्त को न छोड़ा।

"सच्चा सदगुरु कोई न पूजे, झूठे जग पतिआए।, कहें कबीर सुनों भाई साधो, झूठ कहा न जाए।।

बात तो यह ठीक है क्योंकि गुरु के बिना घट का अन्धेरा दूर नहीं होगा। यहीं संत महापुरूषों का कहना है **कि सब प्रकार के अभिमान को त्याग कर गुरु के चरणों की सेवा करनी चाहिए। अशान्ति को दूर करने की ताकत गुरु के वचन में ही है।** इन्सान और जितने भी उपाय करता है सब बेकार हैं। सदगुरु की संगत ही जीव को भव से पार करती है।

"मत कोई भरम भूलो संसारी।, गुरु बिन कोई न उतरसि पारी।।

शास्त्रों में लिखा है सर्वस्व गुरु सेवा में लगाना चाहिए परन्तु यदि सर्वस्व सेवा में न लगा सके तो दसवां भाग तो गुरु सेवा में जरूर लगाना चाहिए। जो इतना भी गुरु सेवा में नहीं, लगा सके उनका भला कैसे हो सकता है। गुरु सेवा में मन तभी लगता है जब जब सत्संग सुनता है सुन कर नाम सुमरन में लगता है। जो सब प्राणीयों का आधार है।

"चहुं युग चहुं श्रुति नाम प्रभाऊ।, कलि विशेष नहीं आन उपाऊं।।

दासनदास

सह सम्पादक

अलख

बन्दौ गुरु पद परम परागा

प्रवचन श्री सद्गुरु देव जी महाराज

"वकता में मुख वसूं, श्रोता के मैं कान।"

भगवद प्रेमी सज्जनों जिसने अपना चित श्रवण पट में जोड़ लिया या अपने चित को ओर ओर तरफ से हटा करके वचनों को सुनने और पीने लग गया, और पीने लग गया, चित्त को संसार के कार्यो से हटा लिया तो श्रोता है। जिसका मन वचनों को सुनने में एकाग्र नहीं वह श्रोता नहीं तो जो सुन रहा है उसे वचनों की चोट लगती है भ्रम भागते हैं और मोह ममता के डेरे हटते है वहां उनका चारा नहीं चलता यह होता तब है जब श्रोता सावधान होकर संसारी वासनाओं को चित्त से हटा कर पवित्रता पूर्वक, शान्तिपूर्वक वचन सुनता है ऊपर से तन को बैठते समय हिलाए डुलाए ना ताकि दूसरों को भी खलबली न हो और दूसरी पवित्रता मन से है मन को पकड़ कर बांधे मन को वकता के आगे बिछा देवे।

पुराने समय में लिफाफे बगैरा नहीं होते थे तो ग्राहक अपना वस्त्र फैलाता था दुकानदार तोल तोल कर उसमें डालता रहता सो **तुम भी ऐसे ही अपने चित्त के पट को भी बिछा देवो जिस समय श्री गुरु महाराज जी वचनामृत डाल रहे हों तो डलवा लो। पवित्रतापूर्वक, शान्तिपूर्वक चित्त रूपी पट को टिकने, रूकने देवें, भरने देवें, ठंडा होने देवें क्योंकि चित्त जन्म जन्मातर का जला हुआ है, बोझल है दुःखी है, ज्ञान रूपी अग्नि से ठंडा होता है मल जलते हैं वचनामृत से ही चित्त को ठंडा होने देवो तो चित्त की कली दिनों दिन खिलती है उस प्राणी का दिनों दिन विकास होता है जब ऐसे सुनता है तब श्रोता है मानों ऐसे श्रोता के हृदय में भगवान निवास करते हैं नहीं तो कल्याण दूर है जब चित चेला बन जाए दासनदास हो जाए–**

"मन मुरशिद की करके चाकरी
चित्त अपने को चेला कर।"

चित चेला हो जाए अपने कल्याण की कामना आप ही अच्छी तरह करें चित अपने का आप चेला बने चित अपने का आप मित्र न बना तो खास काम न बनेगा क्योंकि चित किसी न किसी का चेला है ही कौन है गुरु उसका?

"कामी का गुरु स्त्री, लोभी का गुरु दाम।
भक्तों के गुरु संत हैं, संतों के गुरु राम।"

कामी का गुरु स्त्री है लोभी का गुरु है रूपया पैसा, धन, धन के लिए क्या-क्या कष्ट नहीं उठाते, ध न के लिए चाहे कितना जागना पड़े, कहीं दूर जाना पड़े, देश प्रदेश में जाना पड़े दुनियावी कामों में चाहे लाईनों में खड़े होना पड़े कोई शर्म नहीं आती पर सत्संग में आने में शर्म आती है, गुरु धारण करने में शर्म आती है, ज्ञान की प्राप्ति करने में शर्म आती है क्योंकि धन लोभी का गुरु है।

उधर कामी पुरूष स्त्री को सुखी करने को सब कुछ करता है कैसे पूरा भार्या दास बन जाता है चाहे बाद में जाकर कभी जागे और पछतावे भी।

"भक्तों के गुरु संत हैं, संतों के गुरु राम।"

चित को चेला बनाना है जब तक चित सदगुरु का चेला न बना है जब तक चित्त सदगुरु के वचनों में अटूट श्रद्धा धारण नहीं करता सदगुरु के वचनों को पपीहा की भान्ति पान नहीं करने लगता है जब तक वचनों का लोभी नहीं बनता, जब तक सत्संग का प्रेमी नहीं होता कि सत्संग का एक वचन भी छूट न जाए बल्कि और मिले और मिले, और मिले

जब भी कभी सत्संग की तड़प उठे तो उसे दबावे नहीं बल्कि उसी समय सत्संग के लिए पूरा प्रयत्न करके दौड़े। घंटी तो सबके अन्दर बजती है समय समय पर जो अवहेलना, लापरवाही करता है यानि अपनी तरफ से मान्यता नहीं देता वह अपने कल्याण के नेत्र बन्द कर लेता है, आप माया की तरफ को जगत की वासना की तरफ ज्यादा रूचि लेता है पर जो घंटी बजते हीं स्यानापन करे और सत्संग के लिये दौड़े उसका मन निर्मलता, पवित्रता, शीतलता शान्ति की तरफ को बढ़ता है–

"जां घट हरि की भक्ति नहीं, संत नहीं मेहमान।
तां घट यम डेरा किया, जीवत ही शमशान।"

भक्ति घट में होनी है संत जब हृदय से प्यारे लगने लगें तो मानो अपना मित्र आप बनता जा रहा है अर्थात् जब तक चित्त पूरे प्राणों से चेला नहीं बनता तब तक ऊपर से चेला बनने से कोई खास यानि विशेष लाभ न हो जाएगा। चित्त के भ्रम दूर न होगें आनन्द का झरना न खुलेगा। समाधानता भी नहीं आएगी, वास्तविक शान्ति आनन्द नहीं आता अगर चित्त चेला न हुआ तो बाहर से शिष्य कहलावे भी तो शान्ति–शान्ति आनन्द का मजा तो चखा ही नहीं बाहर की बातों में उलझेगा। जात–पात में जो कि ऐसी उलझन है जिसका जीवन भर कभी किनारा नहीं आता, भेद मजहब में, रंग नसल में बड़प्पन में किन्हीं न किन्हीं प्रकार के अहंकारों में दु:खी रहेगा जो भीतर में 'हाय' है वो बढ़ेगी तो पर शान्त नहीं हो पाती इसलिए लौट कर आओ उसी बात पर अपने मन को समझाओ–

"मन मुरशिद की करके चाकरी,
चित्त अपने को चेला कर।।

नौकरी नहीं नौकर तो तकरार भी कर सकता है कि समय हो गया मैं जाता हूं या तनखाह बढ़ाओ तो करूंगा। यहां दास भी नहीं क्यों कि दास कहलाने वाले भी बहुत होते हैं दास भी बाहरी बातों में खान–पान में उलझ जाएगा, प्रशाद में, बैठने–उठने में कहीं न कहीं संश्यले आएगा कि ऐसा कैसे वैसा कैसे यह सब माया की ही जागीरी है माया की ही भूमियां है सत्त का द्वार कुछ और ही है बाहरी एकता बाहरी शान्ति दिखावा है सदैव साथ निभाने वाला नहीं सब प्रकार से मन हीन यानि नीवां करके गुरु वचनों को धारण कर अपना खोट आप निकाल यह न देख दूसरे क्या करते है दूसरे सत्त धारा में बहते हैं। **लगन ही शिष्य है और प्रवाह ही गुरु है लगन रूपी पात्र है उसमें प्रवाह पड़ता है तो शिष्य है अगर लगन का दीवा गुल हुआ और कहीं की कहीं गई लगन जाती नहीं बल्कि किसी और चीज़ खान–पान, पति–पत्नी, बेटे–पोतरे रूप सुन्दरता मैं मेरी में चली गई लगन तो एक थी: कबीर जी फरमाते हैं :–**

"कबीर मन तो एक है, भावे यहां लगाएं।
चाहे गुरु की भक्ति कर, चाहे विषय कमाए।।

लगन एक है चित्त एक है अगर उस सच्चे प्रवाह का प्यासा है उस सच्चे स्रोत का प्यासा है सच्चे आनन्द का मुतलाशी है तो शिष्य है अगर शिष्य प्रवाह की खास इच्छा नहीं रखता या एक कान से सुना दूसरे से निकाल दिया या अपनी मनमानी करता है कि ऐसे ही सत्संग मिलता रहेगा, भीतर शिष्य नहीं अगर भीतर से सुनेगा तो जागेगा अगर भीतर मर चुका है Dead हो चुका है अन्दर तो कहीं और लगा है।

"मन तो कहीं और दिया, तन साधन के संग।
कहें कबीर कोरी गजी, कैसे लागे रंग।।

अनमोल वचन

1. धन्य हैं वो भाग्यशाली जो अंतिम घड़ी तक तन–मन से गुरु दरबार की सेवा करते हैं।
2. जो सदगुरु के वचनों पर अमल नहीं करता वह भले कितना ही पढ़ा–लिखा हो उसे यदि अनपढ़ कहा जाए तो गल्त नहीं होगा।
3. सेवक को सदैव पावन विचारवान, उत्साही, दृढ़–निष्ठावान और धैर्यवान् बनना चाहिए।

4. सेवक को आलस्य छोड़ कर सेवा के लिए हर समय तत्पर रहना चाहिए तब यह गुरु कृपा और प्रसन्नता का पात्र बन सकता है।
5. मनमति के अनुसार चलने वाले के दीर्घ जीवन की अपेक्षा गुरुमति के अनुसार चलने वाले का अल्प जीवन ही अच्छा है।

— — — — — — — — शांती वचन भंडार से।

अगर बुलावा किसी कारण आता है या समाजिक रीति के कारण आता है या प्रलोभन वश देखा-देखी आता भी रहे और बराबर आता ही रहे पीछे न हटा ऐसे अनजिज्ञासु को भी शब्दों का थपेड़ा लगेगा सत्संग में थपेड़े लगते हैं चापलूसी नहीं होती यहां चापलूसी है वहां सत्संग नहीं है दूसरों को बढ़ावा दिया जा रहा है, बढ़ाई तो दी जा रही है परन्तु जीवों का खोट निकाले कौन? सोने से खोट न निकाला जाएगा तो चमक कहां से आएगी ऐसे ही जीव से खोट न निकाला जाऐगा तो शुद्धि अथवा भक्ति कहां से हाथ लगेगी बातों का गोंदूं रह जाएगा जो सत्संग के थपेड़ों से मन की मलीनता को धोता है वह शिष्य है शायद आते-आते मुर्दा रुह जगे कोई ऊर्जा रोशनी की किरण प्रजज्वलित हो जाए, फिर वह पश्चाताप करे फिर सम्भले कि मैं कहां जा रहा हूं, मैं कहां से उठा था क्या लगन लेकर चला था, क्या आशा लेकर सत्संग में आया था उपदेश किस कारण लिया अब मैं उन्नति की अपेक्षा अवनति की तरफ क्यों जा रहा हूं यानि ऊंचे से नीचे की तरफ क्यों जा रहा हूं मैं किस लिए भक्ति मार्ग में निकला था मेरी कैसी मूर्खता है

— — — — — — — — — — — — — — — —

"चोट मोंच सूजन"

शरीर के किसी भाग में चोट लगने पर खून न निकले और सूजन आ जाए या मोच आ जाने से सूजन आ जाए तो बहुत कष्ट होता है। शीत काल में तो पुरानी चोट भी पीड़ा देने लगती है तो फिर ताज़ी चोट का तो कहना ही क्या।

ऐसी स्थिती में निम्नलिखित उपाय करें।

प्याज और हल्दी को पानी मिलाए बिना एक साथ कूट पीस कर चटनी जैसा कर लें । इसे आग पर गर्म करके उतार लें। और सहता-2 गर्म रहे तब जितने भाग में सूजन हो उतने स्थान पर लेप करके पट्टी बांध दें। दो तीन दिन ऐसा करने से आराम हो जाएगा। पट्टी सुबह शाम तैयार कर दिन में 2 बार बांधे।

आपने आप से प्रश्न करे जो आगे से सम्भल जाता है वह शिष्यता में लौट आता है पुनः प्रवाह बहने लगता है परन्तु सावधान, जिसे गिरने की लत पड़ चुकी है, उसका फिर खतरा है गिरेगा वह फिर किसी के बहकावे में आ जाएगा कुसंगत बहुत बुरी चीज़ है कुसंगत पत्थर फोड़ देती है कुसंगत भाइयों को लड़ा देती है, कुसंगत बाप बेटे को लड़ा देती है क्योंकि बहकाने वाले को किसी न किसी को बहकाए बिना चैन नहीं आती दूसरों को दुःखी देखकर दुष्ट प्राणी सुखी और खुश होता है :-

"विधि जस सुजण कुसंगत पर हीं।
फनि मनि सम निजांगुन अनसरहीं।।"

कुसंगत का फल बड़ा दुःखदाई होता है परन्तु समय पर जीव समझ नहीं पाता जब कि सत्संग में आकर कुसंगत न छूटे।

जो शैतान की रमज़ को समझाने लग जाए तो शैतान के चक्कर में आकर फिर पिछले संस्कारों वश और सेवा सत्संग के संस्कारों वश से अन्यथा किसी भाई बहन के जगाने पर ही फिर जाग उठे वो तो शैतान की रमज़ पकड़ने वाला भली प्रकार से जाग जाया करता है। शैतान (मनमुख) गुरु वचन अथवा शास्त्र के वचन में अपनी मन मति अपनी इच्छा जोड़ता है कि मैं अकेला न रह जाऊं कोई और भी टूटे कोई और भी गिरे पर साथ-साथ भक्त कहलाने की होशियारी भी खेलता है उसे शैतान कहते हैं जो

भक्त हैं गुरुमुख हैं वह उस शैतान से बहुत दूर व सावधान रहता है अथवा उसके बहकावे में नहीं आता या यथा शीघ्र उचित उत्तर से उसका मुंह बंद कर देता है अगर मार्ग में शैतानीयत न सता जाएं तो मार्ग बहुत लम्बा नहीं है कहा भी है न :

"तजो रे मन हरि विमुखन को संग।
जाकि संगत से कुमति उपजत है,
परत भजन में भंग।"

पर यदि चारों और से सावधान होकर बचकर विचार करके चले जब भी भीतर कभी सत्संग की घंटी बजे तो सत्संग में आवे रुके नहीं इस इच्छा को दबावे नहीं क्योंकि सत्संग के बिना भजन हो ही नहीं सकता।

"कहा भयो द्रोऊ लोचन मूंद कर।
बैठ रहिओ वक ध्यान लगाए।।
नहात फिरो लिये सात्त समुन्द्र।
लोक गयो परलोक गंवाए।।

बगले की भान्ति आंख बन्द करके भले बैठ जावे पर अन्दर से चित्त संसार में ही चक्कर काटेगा सो जो इन बातों से बचकर मन अन्दर लगाता है आगे से सम्भलता है वही शिष्य है :-

"जैसी लागी शुरु में तैसी निभावे तोड़।
अपना तो कहना क्या, तारे पुरष करोड़।।

जैसी-जैसी शुरु में लगन लगी क्या इच्छा लेकर चला वह जड़ है उसे ही बढ़ाए पीछे न हटे उससे है आगे बढ़ना अगर शुरु की लगन को जीवित रखे भटकने न दे तो आप तो तरता ही है औरों को भी तारने का कारण बनता है पर जो सो जाता है अज्ञान, निद्रा मोह संशय सताता है दुनिया का मोह भक्ति मार्ग में सता क्यों जाए।

"जिथे दिल विच गुरां जी दा प्यार होवे,
दुनिया दा मोह सतावे क्यों।
जिथे सच्च दा आ प्रकाश होया,
ओथे झूठ भला रह जावे क्यों।।"

जिस दिल में श्री गुरु महाराज जी के प्रति, ईश्वर के प्रति प्रेम हो उसे दुनिया की मोह तथा माया सताती नहीं।

संत कबीर जी के समय में माया ने अनेक प्रकार के झगड़े खड़े किए।

एक बार भगवान् विष्णु नेत्र बंद किए लेटे हुए थे लक्ष्मी जी चरण सेवा कर रहीं थीं और पूछा गया प्रभु आपको निद्रा आ रही है कुछ ही क्षण में दोबारा पूछने पर उत्तर दिया,"नहीं लक्ष्मी,"मैं अपने भक्तों का ध्यान कर रहा हूं।"

लक्ष्मी जी – "कोई आपका भी भक्त है क्या? भक्त तो सब मेरे हैं।

भगवान् विष्णु – लक्ष्मी भक्त तेरे बहुत अधिक हैं परन्तु मेरे एक भक्त की बराबरी तेरे अनेक भक्त मिल कर नहीं कर सकते।

लक्ष्मी जी – पर मेरे भक्त पुकारते तो तुम्हें है ज़ोर-ज़ोर से परन्तु क्या कोई तुम्हें टिकने भी देता है या चाहता भी है?

भगवान् विष्णु – लक्ष्मी तेरा भक्त तो मुझे कुछ देरी के लिए ठहरने भी देगा जब तक कि तूने बहका न लिया परन्तु मेरा भक्त तुझे कभी न ठहरने देगा अनेक वचन वार्ता होते हुए दोनों ने निर्णय लिया कि अच्छा चलो जरा भक्तों को देखें।

एक बार सेठ जी नित्य प्रति टम-टम में बैठकर गंगा किनारे जाया करते, स्नान इत्यादि करते हुए जोर-जोर से मन्त्र भी पड़ते, अनेक प्रकार की जै जै कार की ध्वनि भी उचारते, परन्तु यह सब बाहरी बातें मन अन्दर को नहीं कर पाती क्योंकि मन अन्दर है पर साधन बाहर। जैसे कूड़ा करकट कमरे में अन्दर भरा हो और झाड़या धुलाई बाहर की जाती रहे कमरे को ताला लगा हो तो प्रश्न है कि कूड़ा करकट कितने दिनों में साफ होगा अन्दर का?

उत्तर – कि कभी नहीं, क्योंकि कूड़ा करकट तो अन्दर है और सफाई बाहर की जा रही है अर्थात् मैला तो मन है वह अन्दर है और साधन बाहर किए जा रहे हैं जो मन को पकड़ते नहीं उससे मन कैसे

साफ होवे।

अर्थात् सेठ बहुत अधिक भगवान् को पुकारता ताकि लोग सुने अथवा देखें कि यह बहुत बड़ा भक्त है :-

धूर्त और लालची शासक का शासन प्रजा को सुख नहीं देता, खराब आदमी दोस्ती का सुख नहीं देता, खराब स्त्री गृहस्थी का सुख नहीं देती, खराब वाहन यात्रा का सुख नहीं देता।

ऐसे ही मनमुख को कभी भी भक्ति सुख नहीं मिलता।

"जिन्हों को ईश साधिक है,
वह कब फरियाद करते हैं।
लवो पे मोहरें खामोशी,
दिलों में याद करते हैं।"

यह ऐसी युक्त कि दिल में कैसे याद किया जाए मुंह से तो कुछ भी न कहा सुना जाए यह युक्ति मात्र सदगुरु से प्राप्त होती है और सत्संग में रूचि लेने वालों को ही प्राप्त होती है।

श्री भगवान ने भी एक बार ब्राह्मण का रूप धारण किया और गंगा किनारे आसन जमा विराजमान हो गए सेठ जी ने नित की भान्ति आज और अधिक शोर मचा-मचा कर बड़े ऊंचे स्वर से भक्ति को मखोटा बनाया और वो गर्व के साथ कहने लगे चलिए पंडित जी आज का खाना हमारे घर खाइएगा। **उत्तर ब्राह्मण देवता :-** कि जी छोड़ो जो मिल जाएगा यहां बैठे-बैठे खा लेंगे अथवा गंगा जल पी लेंगे। अभी तो आप ले जाओगे और फिर कहोगे जी आप यहां से जाओ आने-जाने के झगड़े में कौन पड़े यहीं ठीक है सेठ जी ने अपना बड़ा लाभ देखते हुए सोचा और कहा दो रोटी ही तो खाएगा यह तो बहुत लाभ की बात है, डियोढी में बैठा दूंगा और लोग आने-जाने वाले कहेंगे कि सेठ जी ने ब्राह्मण पाठ पर बिठा रखा है और लोग कहेंगे धन्य है सेठ जी और बड़े भक्त हैं क्योंकि दुनिया के पास भी तो भक्त का क्या प्रमाण है?

वास्तविक भक्त कोई भी हुआ हो समय-2 पर उसे कई प्रकार के कष्ट भी दिये गए परन्तु समझा किसी विरले ने हीं क्योंकि सच्चा भक्त किसी की हां में हां नहीं मिलाता अन्तर आत्मा से सत्त असत्त का निर्णय लेता है गुरु वचन और शास्त्र वचन का मिलान किया करता है देखा देखी छोड़ कर सच्चे प्रेम की खोज में निकलता है अपना आपा (अहंकार) को छोटा करता हैं, शास्त्र, वचन और आत्मा अनुभव का मिलाप करता है और अपनी स्तुति नहीं चाहता बल्कि स्तुति सुन कर उल्टा दुःखी या चिन्तित होता है। पर उधर अपनी निंदाओं की भी प्रवाह नहीं करता लोक दिखावा नहीं करता परन्तु अपने अन्दर से सेवा, सत्संग भजन में परिपक रहता है इसके लिए उसे अनेक प्रकार के संसारिक समाजिक, परिवारिक कष्ट झेलने ही पड़ते हैं, पर फिर भी शुक्र गुजारता है कि ठीक हैं मन का मैल खो रहा है। अहंकार रूपी, सांप जो निशदिन डंक मारता था तो वो बलहीन होता जा रहा है देखता है सुमति बढ़ती जा रही है और कुमति शेष होती जा रही है। गुरु चरणों में प्रेम दिनों दिन बढ़ता जा रहा है।

किसी विशेष कारण से यदा-कदा सत्संग में नागा हो जाए तो उस दिन को कोसता है पछताता, अपना अभाग्य सम्मुख आया प्रतीत करता है कि आज सत्संग क्यों छूट गया आगे से और दृढ़तापूर्वक सत्संग में प्रवेश होने के लिए दृढ़ संकल्पी होता है।

पर उधर देखा देखी भक्ति में लगे हुए प्राणी को कुछ भी यह पता नहीं होता कि मन क्या है? रूकता कैसे हैं? मन कहां लगाया जाए? ज्ञान क्या? ध्यान क्या? ईश्वर क्या.....? भक्ति क्या? सुमति क्या? हुई या नहीं? इन बातों का कुछ पता नहीं होता। देखा देखी में बहता जा रहा है और समझा कुछ नहीं। पढ़ा है तो क्या पढ़ा समझा। कुछ नहीं, गाता है पर क्या गाया समझा कुछ नहीं तोते

की तरह रटना तो हुआ है लोगों ने बढ़ावा दिया।

"नाचे कूदे तोड़े तान।
दुनियां वाको राखे मान।।"

तो अल्प काल के लिए कि मैं भक्त हूं संतुष्ट सा हो जाता है कि नहीं तो लोग ऐसे ही मुझे कहते हैं ऐसे ही बुला-बुला लेजाते हैं ऐसे ही आगे, बिठाते हैं, परन्तु इन झूठे सरटीफिकेटों या प्रमाण पत्रों से कुछ हो जाना नहीं अपने आपे को धोखा ही देना हैं, परन्तु जो मनुष्य का शरीर जो अमोलक है, रत्न है उसका समय जाया करना है काल सिर पर है वो कभी बखशेगा नहीं। जिन साधनों से अब मन न टिका वो आखरी समय कैसे काम आएगें विचार करना चाहिए :-

"अन्त कालेच मामेवस्मरन्मुक्ता कलेवरम।
य प्रयाति स मद्भांव नास्त्यत्र संश्य।।"
(गीता अ. 8 श. 5)

भगवान् श्री कृष्ण का वचन है कि जो अन्त समय सुमरन करने हुए शरीर छोड़ता है वह साक्षात मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है इसमें कोई संश्य नहीं। जब सुमरन न हुआ मन न टिका तो आखरी समय मन कैसे टिक जाएगा कैसे भगवान को मिलेंगे। जीवन भर और-और बातों को तो समझा, पूछा, सुना, टटोला देखा और परखा पर जो भक्ति भाव के लिए, ज्ञान ध्यान के लिए सच्ची तहकीकात न की तो अमोलक जीवन पश्चाताप करते, सिसकीयां भरते हुए दुःखी होकर छोड़ना पड़ेगा।

समझदार वही है जो आग लगने से पहले ही कुंआ या नलका, तलाब या बावड़ी तैयार का लेता है। उपरोक्त कार्य प्यास लगने पर पूरे नहीं किए जा सकते। ऐसे ही अन्तिम समय भी भजन, ध्यान भक्ति न हो जाएगी जब कि जीवन भर चित का वासा जहां-जहां रहेगा वही बात ही अन्तिम समय सुमरिन होगी, याद आएगी।

"यं यं वापि स्मरन्भाव त्यजतदभावयन्ते कलेवरम।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा भावितः।।

तो सेठ जी की चतुराई भरी बुद्धि दूर तक गई कि इसमें तो लाभ है सच्च है जीव संसारी बात तक ही लाभ सोच सकता है। परन्तु यह सारे सोचे और किए हुए लाभ सब शरीरों तक हैं और शरीर पुनः पुनः छुटता है वास्तविक लाभ को तो जड़ चेतन की गांठ खोलने वाले, सत्त-असत्त का निर्णय देने वाले, जीव आत्मा-परमात्मा का मेल मिलाने वाले भगवान् के सच्चे स्वरूप का साक्षातकार किए हुए और सच्चे हृदय से, आने-जाने वाले जिज्ञासु को उस भरगो ज्योति का, विश्व रूप का दर्शन कराने वाले महापुरूष के सान्धिय में चिरकाल तक सेवा करने से, संगत करने से हृदय का अज्ञान अन्धकार हटता है और दिव्य नेत्र खुलता है जिससे कि सत्त असत्त का वास्तविक कल्याण का पता चले यूं तो कहलाने के लिए आज बहुत लोगों ने सत्संग नाम रख लिया है परन्तु सत्त+संग हुआ या नहीं इसका पारखी, इसका खोजी कोई विरला ही है जो कि देखा देखी में ओर बातों में नहीं अटकता पर ऐसे प्राणी दुनिया में हैं ही कितने?

तो सेठ जी ने छोटा लाभ तुच्छ लाभ तो सोचा पर बिना सत्संग के पूर्ण लाभ न सोच सका ठीक भी है-

"ओच्छ मति घट थोथरा, कैसे करे विचार।
दुनियादारी में बहे, मूढ़, अज्ञान गंवार।"

तो सेठ जी ने उत्तर दिया कि ब्राह्मण देवता आप निःसंकोच मेरे घर चलो वहां बैठ कर पूजा, पाठ करना (भजन, ध्यान कुछ होता है। इसका तो सेठ जी को अक्षरों तक का पता न था वास्तविक पता तो कैसे हो) मैं तुम्हें कभी भी घर से न हटाऊंगा, कभी न भेजूगां। आप हमेशा के लिए वहां रहना और आप अवश्य चलें। ऐसा वचन देकर सेठ जी ले आये।

मारे डर के कि सेठानी कहीं जाते कुछ न कहने लग जाये क्योंकि मैंने तो अभी उससे कुछ पूछा भी

नहीं था मैं तो इसे हमेशा के लिए ले आया हूं, पीछे ही कहीं ठहरा दिया और बड़े तरीके से सेठानी को भी इस बात की खूबी जताई-.... देखो दो रोटी ही खायेगा घर की रखवाली बिना तनखाह के ही और लोगों में वाहवाही मुफ्त में होगी इसीलिए तू कहे तो ले आऊं बोल-

सेठानी- अपनी संसारिक सुविधा के प्रश्न उत्तर करने के पश्चात् कहा... हां बात तो अच्छी है ले आओ।

और अब लाकर ब्राह्मण स्वरूप विष्णु भगवान् को डेड़ी में बिठा दिया प्रातराशोप्रान्त अपने कारोबार में चले गए। सारा दिन व्यतीत हुआ, रात भी व्यतीत हुई। दूसरे दिन जब गंगा किनारे पहुंचे तो क्या देखते हैं कि वहां एक भगवा भेष धारण किए हुए एक वृद्धा बैठी हुई थी। जब सेठ जी ने भोजन करने को इनको अपने घर ले चलने को कहा अभी आधा ही कह पाए थे कि झट चलने को तैयार हो गई। वहां कोई पूछताछ नहीं कोई शर्त नहीं।

जैसे कान में मन्त्र फूंकने वाले गुरु चेला से भी अधिक उतवाले होते हैं कि तूं चेला हो जा बस क्योंकि कौन-सा घट का कपाट खोलना है। सत्य बोध तो जिसको स्वयं ही नहीं होता, वो शिष्य के घट का ताला खोले भी तो कैसे? सत्य बोध कराए भी तो कैसे? भले ही आप को सच्चा मान रहे पर इससे ज्यादा पता ही नहीं होता कि मन्त्र जप लो, पाठ कर लो, तीर्थ कर लो, कभी किसी को पुकारता है, कभी किसी को पुकारता है। परन्तु ऐसा करते हुए मन वचन और कर्म यह जुदा-जुदा रहते हैं। एक नहीं हो पाते यानि मन कहीं ओर गया होता है मुंह से कुछ और कहता है, कर्म इसके विपरीत कुछ और ही करता है। बस यह अज्ञानता जड़ता, स्वार्थपरता जीवन भर भी दूर नहीं हो पाती। ठीक भी कहा है :-

"गुरु किया है देह का सदगुरु चीन्हा नाय।
भवसागर के बीच में, बह-बह गोता खायं।।"

बाहरी भेष-भूषा, बनावट देखकर गुरु बना लिया। इससे कोई खास लाभ होने वाला नहीं है। भवसागर का बोध भी नहीं हो पाता कि कहां से कहां तक है, तो तैरने की तो कभी भनक भी नहीं हो सकती है। जैसे जल के ऊपर तैरा जाता है ऐसे ही सत्त का बोध हो तो भवसागर के ऊपर-ऊपर तैरा जाता है।

"नानक संत बिहंगमी,
जन सदगुरु दित्ता भेद"

विहंग पक्षी को कहा है जैसे पक्षी ऊपर ही ऊपर उड़ता-उड़ता नीचे चाहे दरिया हो चाहे पहाड़ पर्वत पठार हो, जंगल हो, रास्ता सड़क हो न हो, पर बिना रोक टोक आकाश मार्ग में कहीं का कहीं चला जाता है। फिर जहां पहुंचना भी है वहां भी कहीं ऊंचे शिखर पेड़ पर ही फल आदि खाए, विश्राम लिया या सोया भी। "नानक संत विहंगमी" पर यह तब है अगर सदगुरु मिले और क्षमा पूर्वक सदगुरु की सेवा में अपना आप न्योछावर करे तब ही ऐसा भेद हाथ लगता है अथवा इसमें व्यवहारता पूर्वक जुट सकता है। जो सद्गुरु की शरणागत आने पर यह समझ बैठते कि बस अब ज्ञान तो हो गया अब सेवा सत्संग की क्या आवश्यकता है, वो भी बड़ी भारी भूल में होते हैं। बिना सेवा, सत्संग के भजन नहीं होता, बिना भजन मन में वंचुक ही विचरते हैं। "ध ोबी का कुत्ता घर का ना घाट का"। इसलिए कहा भी है :-

"चतुराई चूल्हे पड़े, भटठी पड़े आचार।
तुलसीदास हरि गुरु की भक्ति बिन चारों वर्णचमार।"

गुरु बिन ज्ञान न उपजे- अर्थात् गुरु के बिना ज्ञान उपजता यानि पैदा नहीं होता।

गुरु बिन मिटे न दोष- गुरु के बगैर चित्त के दोष दुःख (छुपाव) भी दूर नहीं होते।

गुरु बिन लखे न सत्त को- गुरु के बगैर सत्त का अनवेशण (दिव्य दर्शन भी नहीं हो पाता)

गुरु बिन मिले न मोक्ष- तो यथार्थ में भवसागर

से तरने के लिए सदगुरु की शरणागत लम्बा धीरज अर्थात् सेवा सत्संग भजन में जुटना।

भजन

संदेशा आ गया यम का चलन की कर तैयारी है।।
बाल सिर के हुए धोले सफेदी आंख पर छाई।
श्रवण से सुन पड़े ऊंचा दांत हिलना भी जारी है।।
कमर सब हो गई कुबड़ी चले लकड़ी सहारे से।
गई सब देह की ताकत लगी तन में बिमारी है।।
छुटी सब प्रीत तिरिया की पुत्र सब हो गए न्यारे।
बने सब मित्र मतलब के झूठ लोकन की यारी है।।
करो जगदीश का सुमिरण भरोसा राख के मन में।
वो ब्रह्मानन्द है तेरा एक ही सहायकारी है।।

सत्संग से– श्रद्धा जागती है संश्य भागते हैं।

"राम कथा सुन्दर कर ताली।
संश्य विहंग उड़ावन हारी।"

अर्थात् संश्य रूपी पक्षी सत्संग से उड़ जाते हैं अर्थात् हृदय का श्रद्धा रूपी क्षेत्र बच जाता है और स्मरण रूपी फूल फिर आने लग जाते हैं:-

सेवा से– जिसकी सेवा करें उसके गुण सहज से ही अपने भीतर आने लग जाते हैं:-

"सेवक सेवा में रहे अन्त कहूं न जाए?
सिा ऊपर आरा सहे तो सेवक नाम धराए।"
"शिबि धधिची, हरिश्चन्द्र नरेशु,
धर्म हेत सब सहे कलेशु।"

पर सेवा सत्संग वो है जो तान टूट न जाए जैसे हलकी हुई वैसे फिर भरे जैसे टूटे वैसे फिर जोड़े तब तो सेवा सत्संग है वर्ना बातें बनाने से किसी का क्या बिगडेड़गा अपना ही बहुत बड़ा घाटा करेगा।

भजन से– अनुभव होता है और श्रद्धा और भी बलवति होती है। अब पुनः फिर पिछली बात पर लौंटे।

और लाकर उन्हें भी सेठ जी ने एक कोठरी में बिठा दिया। दिन में जब सेठानी जी भोजन लेकर गई तो बहुत बड़ा कौतुक हुआ।

वृद्धा ने कहा-ठहरो-हम किसी के बर्तनों में भोजन नहीं खाते। एक थैले में हाथ डाला, स्वर्ण की थाली, स्वर्ण की कटोरियां, गिलास निकाल दिए। सेठानी को बड़ा आश्चर्य हुआ कि हम इतने बड़े सेठ हैं हमारे पास भी इतने बर्तन सोने के नहीं हैं। परन्तु उन बर्तनों में रोटी डाल कर लाई। भोजन के उपरान्त जब बर्तन उठाए, मांज-धोकर वापिस लाई तो वृद्धा ने फिर कहा ले जाओ। इन्हें फैंक दो। हम जिसमें एक बार खाएं उसमें दोबारा नहीं खाते। जैसे अघम गुरु, अघम वैद्य, मन्त्र दवाई देकर दोबारा कभी पूछता ही नहीं कि शिष्य या रोगी का क्या हुआ, क्या बना, क्योंकि जब स्वयं को भी ज्ञान, ध्यान नहीं तो पूछ कर करेगा भी क्या?

इधर सेठानी को बड़ा आश्चर्य हुआ। बर्तन फैंकने तो किसने थे घर में रख लिए। रात्रि के भोजन के लिए और अधिक साग, सब्ज़ियां, रैयता, खीर, नमकीन, चावल, हलवा, आचार, चटनी आदि बनाए ताकि बर्तन और ज्यादा मिलें। अब रात्रि के भोजन के पश्चात् बर्तन फिर रख लिए। सेठ सेठानी सोचने लगे कि अगर यह कुछ दिन और ठहर जायें तो बस मालोमाल हो जायें।

जैसे बेचारा संसारी जीव धन सम्पदा, परिवार इत्यादि से अधिक सोच सकता ही नहीं। इसी कारण जीव भाव से लदा है, बहुत बड़ा बोझा उठाए हुए हैं। करता और भोगता की हथकड़ी और बेड़ी लगी हुई है। जन्म और मरन की फाईल (संचित कर्म) सिर पर हैं। रोग और बुढ़ापा सदैव आंखें दिखाते और घूरते रहते हैं या कुछ देर के लिए ओझल होकर हंसते रहते हैं पर बिना संगत के जीव इन ठगों से बचने का उपाय करे भी तो कैसे? क्योंकि इतनी समझ ही नहीं कि यह तेरे अपने नहीं ठग हैं।

"सिर पर काल तेरे तैनूं सुझदा नहीं,
भन्ने काल हंकार, हंकारियां दे।
हूंझे गए जहान तों मौज दासा,
अग्गे आए जो मौत बहारीयां दे।।"

लेकिन जैसे प्रातःकाल हुआ तो बाई जी ने कहा मैं तो चली, बस जाऊंगी ही अब सेठ सेठानी मलान बदन होकर हाथ जोड़ कर दण्डवत (डंडे की तरह लेट कर) प्रणाम करते हुए बार-2 पूछते हैं कि माता जी आपको कष्ट है, क्या हैं' आप न जाएं भला आपके बिना हम किसी काम के नहीं-तो उन्होंने कहा कि मैं कभी भी एक ही जगह बहुत समय तक नहीं ठहरती।

सेठ सेठानी – कुछ दिन तो ठहर जाओ, अभी तो आप कल ही आए हो।

बाई साहिबा – नहीं, मैं बिल्कुल नहीं रहूंगी क्योंकि मैं जैसे कहूंगी तुम वैसा करोगे नहीं।

सेठ सेठानी – नहीं, तुम जैसा कहोगे हम वैसा करेंगे तुम हुक्म करो, पहले कह चुके हैं जिसका जिस समय वास्तव में गुरु होता है, अपने गुरु की हर प्रकार की खिदमत में जीव जुड़ा रहता ही है क्योंकि मन पलटे खाता रहता है। **"लोभी का गुरु दाम"** बाई साहिबा नहीं बल्कि 'दाम' (धन) गुरु उस समय था वो इनके जरिए से उपलब्ध दिखाई दे रहा है, जिससे हृदय चित्त सारी शक्ति को समेट के इसमें लगा रहा है : कि रुक जाओ, नहीं आप तो मेरे प्राण हैं।

बाई साहिबा – अगर मुझे जरूरी रोकना है तो पहले उस बूढ़े को घर से निकालो।

सेट सेठानी – लो यह कौन-सी बड़ी बात है- यह तो बाएं हाथ का खेल है अभी निकालते हैं, तुम मत जाओ परन्तु बेचारे न समझे, अल्प मति-यह क्या जाने कि वह बूढ़ा ब्राह्मण कौन है। पास जाकर कहने लगे कि ब्राह्मण देवता अब आप यहां से जाओ क्योंकि "रमता योगी बहता पानी अच्छे होते हैं, रूकने से सड़न पड़ जाती है- लगे शिक्षा देने।

ब्राह्माण देवता – आपने तो कहा था कभी नहीं निकालेंगे क्या बात हो गई?

सच्ची बात का उत्तर तो कोई सच्चा देवे- लोभी, लालची, कामी, क्रोधी के पास सच्च का उत्तर कैसे हो सकता है, जब भी कहेगा आज कहेगा कल को पीछे हट जाएगा, बार-बार बदलाहटें करेगा बार-बार मरवोटें बनाएगा कभी रोयेगा, कभी हंसेगा, कभी मलान बदन होकर बहुत ही झुकेगा, दीन होगा अहसानमन्द होगा और कभी फिर पलटा खाकर कुछ का कुछ और ही बनेगा। बेचारे जीव के बस की बात नहीं :-

"तब माया वश फिरहू भूलाना।
ताते न नाथ प्रभु ही पहचाना"।।

हे नाथ आपकी माया वश में भूला ही रहा, चित्त पर माया के पर्दे को पढ़ा होने के कारण आपको न पहचान सका।

पुनः सेठ जी – जाते हो या नहीं-जल्दी जाओ नहीं तो नौकर से धक्के देकर निकलवाऊंगा।

"स्वार्थी के मन नहीं कछु चेतु।
फिर-फिर कहे अपने हेतु।"

बुद्धि में स्वार्थ भर जाए तो चेतना लुप्त हो जाती है जिस कारण बार-बार अपने हित की ही बात सोच सकता है अधिक सोच ही नहीं सकता जीव।

बूढ़े ब्राह्मण स्वरूप विष्णु भगवान् जी धीरे से उठकर वहां से चल लिए। जैसे कुछ दूर गए- आंखों से ओझल हुए थे कि उस वृद्धा ने भी जल्दी पांव आगे धरा, यथा शीघ्र भागी बस अब उसके रूकने का काम रह ही नहीं गया था पर हां यदि विष्णु रूप बूढ़े ब्राह्मण को ठहराए रखते तो लक्ष्मी जी की क्या शक्ति थी कि वो चली जाती वो पतिव्रता स्त्री थी पति रहते तो जरूर रहना ही था निकाले भी न निकलती हटाए भी न हटतीं जब आगे दोनों इक्ट्ठे हुए तो लक्ष्मी जी हंस कर पूछने लगी कि ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला-चिल्ला कर आपको पुकारता रहता है वह पाठ करता है परन्तु अन्दर से तुम्हें नहीं बल्कि मुझे चाहता है ऐसे ही हैं सब तुम्हारे भक्त?

भ. विष्णु – लक्ष्मी अधिक से अधिक तो तेरे भक्त हैं परन्तु मेरा अगर एक भक्त भी हो तो उनकी बराबरी तेरे हज़ारों क्या लाखों भक्त भी नहीं

कर सकते।

ल. जी हंसते हुए– क्या कोई आपका भक्त है भी दुनिया में? लाओ मैं उसे भी उलट-पलट कर देखती हूं कि वह भी तुम्हारा भक्त है..... भक्त तो सब मेरे ही हैं।

"कबीर माया अटपटी, सब घट आन बड़ी।
किसको क्या समझाइए, कुंए भांग पड़ी।"
जैसे कुंए भांग पड़ी।"

जैसे कुंए में भांग पड़ने से सारे पानी में नशा ही नशा हो जाए यह गति सहज ही है कोई विरला प्राणी ही माया को समझाने आंकने भालने की चेष्टा करता है पढ़ते है :

"गो गोचर यहां लगि मन जाई।
सो सब जानहूं माया भाई।। रामायण"

अर्थात् यहां तक दृष्टि, इन्द्रियों की दौड़-धूप हो सकती है यानि कि जो कुछ भी हम देख सकते हैं और बुद्धि से जो कुछ हम सोच सकते हैं जिब्बा से जो कुछ भी बोल सकते हैं सब माया ही माया है। "जो दीसे सो सगल विनास"... गुरूवाणी अर्थात् जो-जो भी दिखाई देवे सब-सब नाशवान् ही है सब माया ही माया है।

"यही-यही वस्तु दृष्टि में आई।
सो सब धर कालहिं खाई।।" कबीर जी

यानि जो वस्तु देखने में आ गई है एक न एक दिन सब काल का ग्रास है।

भ. विष्णु– अच्छा तो जाओ जरा रामानन्द का शिष्य कबीर है उसे जरा उलट-पलट कर दिखाओ तो?

लक्ष्मी– लो अभी लो। लक्ष्मी जी ने अदित्य सुन्दर रूप सेठानी वाला धारण किया सुन्दर सुसजित वस्त्रों और अलंकारों से चहचहाता हुआ रूप कबीर जी के पास गई और कहा मुझे कपड़ा बनवाना है क्या लेते हो बनवाई?

कबीर जी– एक दवन्नी।

लक्ष्मी – लेकिन मुझे आज शाम तक बना दो फिर बोली कितने पैसे दूं।

कबीर जी– कि आज तो नहीं मिल सकेगा क्योंकि मेरे पास तो सात दिन का काम तो पहले ही आरक्षित है आठवें दिन को आपको मिल सकेगा।

लक्ष्मी जी– नहीं मुझे आज ही बनाकर दो और बदले में एक की बजाए दो दवन्नीयां लो।

कबीर जी- बिल्कुल नहीं एक अधेला भी ऊपर नहीं चाहिए परन्तु आठवें दिन से पहले कपड़ा भी न बन सकेगा।

लक्ष्मी जी– बढ़ते बढ़ते अठन्नी, एक, दो, चार रूपए देने को बाध्य करने लगे पर कबीर जी टस से मस न हुए।

लक्ष्मी जी ने फिर कहा- कि तुम्हें एक महीने की कमाई तो एक ही दिन में मिल रही है फिर तुम्हें इतराज है आज ही बना देने में।

कबीर जी– क्षमा करें मुझे पवित्र और निजी कमाई से ही मतलब है शेष का क्या करेंगे मेरी दो समय हाथ जोड़ कर यही प्रार्थना रहती है-

"साहिब इतना दीजिए, जामें कुटुम्ब समाय।
मैं भी भूखा न रहूं, साधु भी भूखा न जाये।।"

"शुभ भाव"

घट में ज्योति जगाय के, प्रगट करो शुभ भाव।
पहुंचे श्री गुरु हिय तक, तेरे मन का भाव।।
तन मन की सुध भूल के, लै आरती थाल।
"ऐसी" आर्त्र बन्दन करो, श्री सदगुरु करें सम्भाल।।
लै नवनीत उपदेश का, सत संग मधु मिलाय।
धरो श्री चरनन माहीं, सदगुरु आप ही भोग लगायें।।
करो परिक्रमा इष्ट की, मान ब्रह्मा, विष्णु, महेश।
तीन परिक्रमा पूर्ण कर, नमों गुरु चरनन शीश।।
हृदय घट उडेल कर, अर्घ करो दे ध्यान।
चरन धूरी, चिन्तन, सुमरिन, मांग कियो यह दान।।
गुरु वर बहुत दयालू हैं, बिन मागें ही देत।
सब आपा अर्पण कर, मांग भगती (या चरनन) की टेक।

वचन श्री सत गुरु के, मन में यूं बसा लेना।
छूट जाए भले जीवन, मगर आज्ञा निभा लेना।।
करें "यश गान सदगुरु का, मिलेंगे रतन बहुतेरे।
करेंगे पालन आज्ञा का, पाएंगे मुक्ति के नेरे।।

अतः फालतु रख कर करूंगा ही क्या?

इस पर लक्ष्मी जी बिगड़ कर- अच्छा तो तेरी मर्जी सूत लिए वापस जाती दिखाई दी। कुछ देर में एक बृषव ताने के नीचे से निकले और धागा तोड़ जाए पर कबीर जी फिर गांठ लेवें वो फिर तोड़े वो फिर जोड़े। जब कई बार ऐसा हो चुका पर कबीर जी ने अपनी शांति भंग न की। उधर देखने वालों ने पूछा हटा क्यों नहीं देते कबीर जी ने उत्तर दिया लोक लोकान्तरों में इसी का तो राज है इसे हटाया नहीं जा सकता समझा जा सकता है समझ कर बचने का उपाय करके सावधानी से आगे बढ़ा जा सकता है। जो इसे समझ जाता है कि कौन है- वह इसके दाओ पेच में नहीं आता बल्कि अपने मार्ग पर आरूढ़ रहता है पर श्री गुरु महाराज जी की कृपा से मैं जान रहा हूं कि यह कौन है-

सार बात- जो हृदय में शब्द रूपी विष्णु को श्रद्धा और प्रेम रूपी हाथों से कस कर पकड़ लेता है वहां लक्ष्मी जी उसके आगे पीछे फिरती हैं पर प्रवाह नहीं करता। जो लक्ष्मी को चाहता पर भगवान का पता ही नहीं और न सदगृरु की शरण लेकर अथवा संगत करके सार ग्रही हो पाया वो कितना ही क्यों न चिल्लाए कितना ही पुकारे कितना पड़े सुने नाम प्रकार से माया के थपेड़े खाता ही रहता है।

पूर्ण तत्वेता सदगुरु की कृपा के बिना किंचित मात्र भी दिव्य नेत्र न खुल पाया जिसको वह पहचाने किसके पहचाने देखे तो किससे देखे सदगुरु की शरणागत आने पर जो मनुष्य अपने मन चित्त को सदैव सुमिरण, भजन, ध्यान, सेवा और सत्संग में लगाए रखता है इस विधि से जो भीतर ही भीतर भगवान् को पुकारता है-

बाहर क्या दिखलाईए, अन्तर जपीये नाम।
कहां काज संसार को, तुझे धनी से काम।।

पर अन्तर नाम कैसे जपा जाये कौन जपे क्योंकि नाम के लिये तो जीभ तालू होंठ की आश्यकता ही नहीं पड़ती। जिन नामों को जीव तालू होंठ के सहारे जपा जाता है उन नामों से कभी भी मन नहीं रूकता और सुरती अन्तरगत भी नहीं जाती।

"सहजेही ध्वनि होत है, हरदम घट के माहिं।
सुरत शब्द मेलाभ्या, मुख की हाज़त नाहिं।"
"सुमिरण सुरत लगाये कर, मुख से कुछ न बोल।
बाहर के पट डार कर, अन्तर के पट खोल।"

जो अपने आप ही हो रहा है, कुदरती है, नैसर्गिक है और दिन रात उठते बैठते सोते जागते होता ही रहता है ऐसे सच्चे सुमरण में जो सुरती को जोड़ता है चिरपर्यन्त ऐसा करने से भक्त का ध्यान कभी-कभी भगवान् स्वयं ही करते हैं वहीं भक्त ध न्य है उसी का भजन ध्यान होता है। भगवान् विष्णु के दो चित्त स्वरूप है, एक से विश्व का पालन पोषण करते हैं और दूसरे चित्त से भगवद् भक्तों और संतों की रक्षा (योग क्षेम) करते हैं।

लक्ष्मी के दो सवरूप एक का वाहन उल्लू है जिसकी सूर्य यानि प्रकाश की तरफ से आंखें बन्द हो जाती जो मात्र लक्ष्मी को ही चाहता है उसकी भी आंखें, ज्ञान, ध्यान से पवित्रता श्रद्धा तथा संत की ओर से बन्द हो जाती है। उधर उसका दूसरा स्वरूप भगवान् विष्णु के साथ गरूड़ की सवारी पर जो कि सुखदायक है भक्त बुलाता है विष्णु चाहता है- पर लक्ष्मी जा तो अनायास न चाहते हुए भी आती हैं परन्तु जो गरूड़ अर्थात् विहंगम मार्ग को जानता ही नहीं, उड़ान भरता ही नहीं वो गरूड़रूप विष्णु भगवान् को कैसे पकड़े, कैसे समझे ?.....

हरि ओम तत्सत्त

TYAG OR DETACHMENT

A certain king used ti inquire of all the Sannyasins that came to his country, "Which is the greater man-he who gives up the world and becomes a Sannyasin, or he who lives in the world and performs his duties as a householder?" Many wise men sought to solve the problem. Some asserted that the Sannyasin was the greater, upon which the king demanded that they should prove their assertion. When they could not, he ordered them to marry and become householders. Then others came and said, "The householder who performs his duties is the greater man." Of them, too the king demanded proofs. When they could not give them, he made them also settle down as householders.

At last there came a young Sannyasin, and the king similarly inquired of him also. He answered, "Each, O king, is equally great in his place." "Prove this to me," asked the king. "I will prove it to you,"said the Sannyasin, "but you must first come and live as I do for a few days, that I may be able to prove to you what I say." The king consented and followed the Sannyasin out of his own territory and passed through many other countries until they came to a great kingdom. In the capital that kingdom a great ceremony was going on. The king and the Sannyasin heard the noise of drums and music, and heard also the criers; the people were assembled in the streets in gala dress, and a great proclamation was being made. The king and the Sannyasin stood there to see what was going on. The crier was proclaiming loudly that the princess, daughter of the king of that country, was about to choose a husband from among those assembled before her.

It was an old custom in India for princesses to choose husbands in this way. Each princess had certain ideas of the sort of man she wanted for a husband. Some would have the handsomest man, others would have only the most learned, others again the richest, and so on. All the princes of the neighbourhood put on their bravest attire and presented themselves before her. Sometimes they too had their own criers to enumerate their advantages and the reasons why they hoped the princess would choose them. The princess was taken round on a throne, in the most splendid array, and looked at and heard about them. If she was not pleased with what she saw and heard, she said to her bearers, "Move on," and no more notice was taken of the rejected suitors. If, however the princess was pleased with any one of them, she threw a garland of flowers over him and and he became her husband.

The princess of the country to which our king and the Sannyasin had come was having one of these interesting ceremonies. She was the most beautiful princess in the world, and the husband of the princess would be ruler of the kingdom after her father's death.

The idea of this princess was to marry the handsomest man, but she could not find the right one to please her. Several times these meetings had taken place, but the princess could not select a husband. This meeting was the most splendid of all; more people than ever had come it it. The princess came in on a throne, and the bearers carried her from place to place. She did not seem to care for any one, and every one

became disappointed that this meeting also was going to be a failure. Just then came a young man, a Sannyasin, handsome as if the sun had come down to the earth, and stood in one corner of the assembly, watching what was going on. The throne with the princess came near him, and as soon as she saw the beautiful Sannyasin, she stopped and threw the garland over him. The young Sannyasin seized the garland and threw it off, exclaiming, "What nonsense is this? I am a Sannyasin. What is marriage to me?" The king of that country thought that perhaps this man was poor and so dared not marry the princess, and said to him, "With my daughter goes half my kingdom now, and the whole kingdom after my death!" and put the garland again on the Sannyasin. The young man threw it off once more, saying, "Nonsense! I do not want to marry, "and walked quickly away from the assembly.

Now the princess had fallen do much in love with this young man that she said, "I must marry this man or I shall die", and she went after him to bring him back. Then our other Sannyasin, who had brought the king there, said to him, "King, let us follow this pair," so they walked after them, but at a good distance behind. The young Sannyasin who had refused to marry the princess walked out into the country for several miles. When he came to a forest and entered into it, the princess followed him, and the other two followed them. Now this young Sannyasin was well acquainted with that forest and knew all the intricate paths in it. He suddenly passed into one of these and disappeared, and the princess could not discover him. After trying for a long time to find him she sat down under a tree and began to weep, for she did not know the way out. Then our king and the other Sannyasin came up to her and said, "Do not weep; we will show you the way out of this forest, but it is too dark for us to find it now. Here is a big tree; let us rest under it, and in the morning we will go early and show you the road."

Now a little bird and his wife and their three little ones lived on that tree, in a nest. This little bird looked down and saw the three people under the tree and said to his wife, "My dear, what shall we do? Here are some guests in the house, and it is winter, and we have no fire." So he flew away and got a bit of burning firewood in his beak and dropped it before the guests, to which they added fuel and made a blazing fire. But the little bird was not satisfied.

He said again to his wife, "My dear, what shall we do? There is nothing to give these people to eat, and they are hungry. We are householders; it is our duty to feed any one who comes to the house. I must do what I can, I will give them my body." So he plunged into the midst of the fire and perished. The guests saw him falling and tried to save him, but he was too quick for them. The little bird's wife saw what her husband did, and she said, "Here are three persons and only one little bird for them to eat. It is not enough; it is my duty as a wife not to let my husband's effort go in vain; let them have my body also." Then she felll into the fire and was burned to death.

Then the three baby-birds, when they saw what was done and that there was still not enough food for the three guests, said, "Our parents have done what they could and still it is not enough. It is our duty to carry on the work of our parents; let our bodies go too." And they all dashed down into the fire also.

Amazed at what they saw, the three people could not of course eat these birds.

They passed the night without food, and in the morning the king and the Sannyasin showed the princess the way, and she went back to her father.

Then the Sannyasin said to the king, "King, you have seen that each is great in his own place. If you want to live in the world, live like those birds, ready at any moment to sacrifice yourself for others. If you want to renounce the world, be like that young man to whom the most beautiful woman and a kingdom were as nothing. If you want to be a householder, hold your life a sacrifice for the welfare of others; and if you choose the life of renunciation, do not even look at beauty and money and power. Each is great in his own place, but the duty of the one is not the duty of the other.

सत्संग सूचनाएं

1. **29 अप्रैल 2015 बुधवार : प्रवचन स्वामी श्री विशेषानंद जी।**
   स्थान – गांव पदराना, तहसील गढ़शंकर, ज़िला होशियारपुर।
   समय – 10 से 1 बजे तक।
   प्रार्थी श्री प्रमोद सिंह जी।
   फोनः – 9592327006

2. **3 मई 2015 रविवार : प्रवचन स्वामी श्री विशेषानंद जी।**
   स्थान – माता रानी मंदिर, ढ़िल्लवा।
   समय – 10 से 1 बजे तक।
   प्रार्थी श्री सतदेव शर्मा जी।
   फोनः – 8146710308

3. **17 मई 2015 रविवार : प्रवचन स्वामी श्री विशेषानंद जी।**
   स्थान – गांव हम्बेवाल, पोस्ट आफिस नंगल निक्कू, तहसील नंगल, ज़िला रोपड़।
   समय – 10 से 1 बजे तक।
   प्रार्थी श्री इकबाल सिंह जी।
   फोनः – 8427868426

4. **31 मई 2015 रविवार : प्रवचन स्वामी श्री विशेषानंद जी।**
   स्थान – गांव गुढ़ा कल्याल
   समय – 10 से 1 बजे तक।
   प्रार्थी श्री खजान सिंह जी।
   फोनः – 07298123621